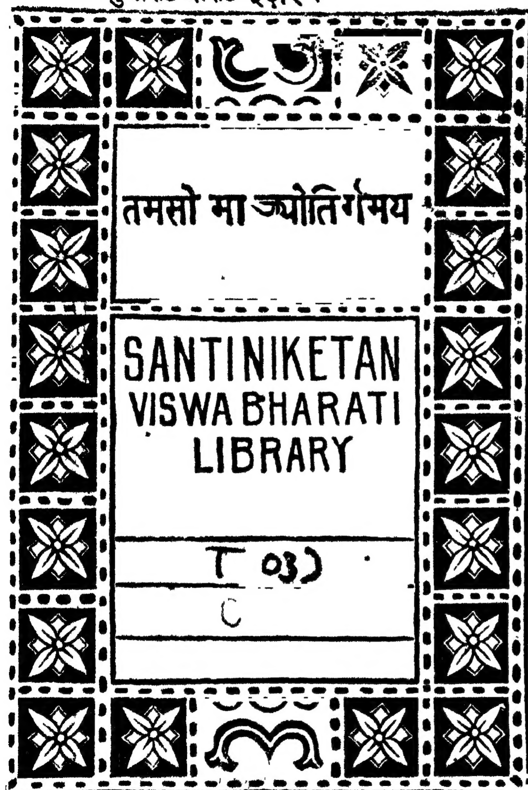
प्रकाशक,
जीतमल लूणिया,
सञ्चालक श्रीमध्यभारत पुस्तक एजन्सी,
बुजांकेट मार्केट-इंदौर ।



मुद्रक,
चिंतामण सखाराम देवळे,
मुंबई वैभव प्रेस, सर्व्हंट्स् ऑफ
इंडिया सोसायटीज् होम, सँढर्स्ट
रोड, गिरगांव-बम्बई ।

हिन्दी-नवयुग ग्रन्थमालाका ४ था ग्रन्थ।

डॉ० सर रवीन्द्रनाथ ठाकुरकृत

चित्राङ्गदा।



लेखक,

श्रीयुत-गिरिधर शर्मा।



संपादक,

पं० हरिभाऊ उपाध्याय।



प्रकाशक,

जीतमल लूणिया,

श्रीमध्यभारत-पुस्तक एजन्सी,

इन्दौर, (मालवा)।



प्रथम वार] अप्रेल सन् १९१९ [मूल्य ।)



श्रीमती सौभाग्यवती सरोजीनी नायडू.

Block by courtesy of Joshi Bros. B. A. P. Works.

समर्पण ।

आर्यावर्तके सुन्दर कविकी यह सुन्दर
कृति श्रीमती सरोजिनी नायडूको
उसके द्वारा किये गये
समाजसेवाके सुन्दर
सुन्दर कार्योंके
उपलक्षमें
सादर
समर्पित
है।



चित्राङ्गदा।



अनङ्ग आश्रम



चित्राङ्गदा, मदन और वसन्त।

चित्राङ्गदा—आप हैं पञ्चबाण?

मदन—हाँ, मैं वही मनोज हूँ। सकल नरनारियोंके हृदयको वेदना-बन्धनसे—सुख दुःखके बन्धनसे बाँधता हूँ।

चित्राङ्गदा—क्या है वह वेदना और क्या है वह बन्धन सो यह दासी जानती है। प्रभो! प्रणाम करती हूँ मैं आपके चरणोंमें [वसन्तकी ओर देखकर] आप कौन हैं देव?

वसन्त—मैं ऋतुराज हूँ। जरा और मृत्यु ये दोनों दैत्य, क्षण क्षणमें विश्वका हाड़-पिञ्जर बाहर निकाल लेना चाहते हैं। वे विश्वको चूसकर कङ्काल कर डालना चाहते हैं। मैं उन दैत्योंका पीछा करता हुआ फिरता हूँ। पद पदपर उनपर आक्रमण करता हूँ। रातदिन यह संग्राम चल रहा है। मैं सब विश्वका अनन्त-यौवन हूँ।

चित्राङ्गदा—आपको प्रणाम करती हूँ भगवन्! देवदर्शनसे यह दासी कृतार्थ हुई।

मदन—कल्याणि, किसलिए तेरा यह कठोर व्रत है? क्यों तू तपस्याके तापसे इस मनोरम यौवन-कुसुमको मलिन कर रही है। अनङ्ग-पूजाकी तो ऐसी विधि नहीं होती। भद्रे! यह बतला कि तू कौन है और क्या चाहती है।

चित्राङ्गदा—यदि आप कृपा करते हैं तो पहले मेरी रामकहानी सुनिए। फिर मैं यह भी बतला दूँगी कि मैं क्या चाहती हूँ, क्या प्रार्थना करती हूँ।

मदन—अच्छी बात, मैं रामकहानी सुननेको समुत्सुक हूँ। कह।

चित्राङ्गदा—मेरा नाम चित्राङ्गदा है। मैं मणिपुरकी राजकुमारी हूँ। उमापति महादेवका यह वरदान था कि मेरे पितृ-वंशमें कभी कन्या न उत्पन्न होगी। मेरे पूर्वजोंके तपसे सन्तुष्ट होकर शङ्करने यह वर दिया था। परन्तु मैंने उसी महा वरको व्यर्थ कर डाला। अमोघ देव-वाक्य मेरी माताके गर्भमें प्रवेश करके शैवतेजके प्रभावसे भी मुझे पुरुष न कर सका, मैं ऐसी कठोर नारी हूँ।

मदन—हाँ, यह तो सुना है। इसी लिए तेरे पिताने तुझे पुत्रके समान पालन किया है। धनुर्विद्या और राजनीतिमें पारङ्गत किया है।

चित्राङ्गदा—इसीसे मैं पुरुष-वेशमें रहती हूँ, युवराजकी भाँति राजकाज करती हूँ, मनमानी सैर करती फिरती हूँ, लज्जा और भय किसे कहते हैं सो नहीं जानती, अन्तःपुरका रहना नहीं जानती, हावभाव नहीं जानती, विलास-चातुरी नहीं जानती; हाँ, धनुर्विद्या सीखी हूँ; परन्तु देव, नहीं जानती हूँ कि नयनके अपाङ्गसे आपका पुष्पधनुष कैसे चलाना चाहिए।

वसन्त—सुलोचने, इस विद्याको कोई स्त्री सीखा नहीं करती; आँखें अपना काम आप कर लेती हैं, जिसके जीमें लगती है वही समझ जाता है।

चित्राङ्गदा—एक रोज मैं मृगयाकें मृगको खोजनेके लिए पूर्णा-नदीके तीरपर सघन वनमें अकेली गई थी। घोड़ेको मैंने वृक्षके मूलसे बाँध दिया। मृगकें पद-चिन्होंका अनुसरण करती करती मैं दुर्गम वनके बाँके-टेढ़े मार्ग पर जा पहूँची। झिल्लियोंकी झनकार हो रही

थी, अँधेरा सब ओर छाया हुआ था। लतागुल्मोंसे अरण्य, गहन-गंभीर हो रहा था। मैं इस महारण्यमें आगे बढ़ी तो एक सँकड़े मार्गपर फटे कपड़े पहने हुए मलिन पुरुष पड़ा हुआ देख पड़ा। मैंने अवज्ञाभरे स्वरमें उससे कहा कि 'हट, रास्ता छोड़'। परन्तु वह न खिसका। खिसकना- हटना दूर रहा उसने आँख उठाकर देखा तक नहीं। मुझे रोस चढ़ आया। मैंने बड़ी ही उद्धततासे तीरकी नोकसे उसकी ताड़ना की। वह सरल और दीर्घकाय नर तत्काल बड़े ही वेगसे उठ कर मेरे सामने खड़ा हो गया, मानो कजलाता हुआ अग्नि घृतकी आहुति पाकर देखते-न-देखते ही प्रचण्ड वेगसे ज्वालाके रूपमें उठ खड़ा हो। थोड़ी देर भी वह मेरी ओर न देख पाया था कि उसका रोस न जाने किधर काफूर हो गया और उसके अधरोंपर मन्दमन्द स्मितकी रेखायें नाचने लग गईं। जान पड़ता है कि मेरी बाल-मूर्ति देखकर उसकी यह दशा हो गई होगी। मैंने पुरुषोंकी विद्या सीखी है, पुरुषोंका ही वेश धारण किया है और पुरुषोंका ही साथ दिया है। इतने दिनोंमें कभी मुझे यह विचार नहीं उठा कि मैं स्त्री हूँ। परन्तु जबसे उस मुखको देखा है और अपने हृदयमें अटल रूपसे अंकित हुई उस मूर्तिके दर्शन किये हैं तभीसे मने अपने मनमें जाना है कि मैं स्त्री हूँ और उसी समय, पहलेपहिल अपने सामने पुरुषको देखा है।

मदन—सुलक्षणे! यह मेरी ही शिक्षा है। एकदिन जीवनकी किसी परम पावन छिनमें मैं ही स्त्रीमें स्त्रीपनकी और पुरुषमें पुरुषपनकी भावनाको चेतन कर देता हूँ।—अच्छा फिर क्या हुआ?

चित्राङ्गदा—डरते-डरते अचरज भरे स्वरसे मैंने पूछा कि "आप कौन हैं?" उत्तरमें सुनाई दिया कि "मैं कुरुवंशी पार्थ हूँ।"

मैं चित्रकी भाँति खड़ी-की-खड़ी रह गई । प्रणाम करना भी भूल गई । यही पार्थ हैं ? यही मेरे जीवनभर का विस्मय है ? हाँ, सुना था कि सत्य-प्रतिज्ञा पालनेके लिए अर्जुन बारह वर्षका ब्रह्मचर्य धारण कर वनवनमें घूमता फिरता है । यही है वह पार्थवीर ! बचपनकी दुराशाके वशीभूत होकर मैं कितने दिनोंसे सोच रही थी कि मैं अपने भुजबलसे पार्थकी कीर्तिको निष्प्रभ कर दूँगी । मेरा वार खाली न जायगा । पुरुषके इस बनावटी वेशमें उससे संग्रामकी याचना कर अपनी वीरताका परिचय दूँगी ।—अरे ना समझ; कहाँ गई वह तेरी स्पर्धा ! जिस भूमिपर वे खड़े हैं उस भूमिका यदि मैं तृणसमूह होती, सारी शूर-वीरताको धूलमें मिला कर उनके चरणतलमें दुर्लभ मृत्युको पाती ।—

याद नहीं पड़ता कि मैं किन किन विचारोंमें डूब गई । आँख उठा कर देखा तो वीर तो वनके भीतर चल दिया । मैं चौंक पड़ी । उसी समय सुधबुध आई । अपनेको सो सो धिक्कार देने लगी । छिः छिः मूर्खे, तूने बातचीत भी न की, हाल भी न पूछा, क्षमा भी न माँगी—जङ्गलीकी भाँति खड़ी रही—वीर तो अवहेलना कर चला गया । उसी समय यदि मैं मर जाती तो इस कष्टसे बच जाती ।—

दूसरे दिन प्रातःकाल ही मैंने पुरुषवेशको अलग कर दिया । लाल साड़ी पहन ली और कङ्कण-किङ्किणी एवं काञ्ची धारण कर ली । इस वेशभूषाका अभ्यास न होनेसे मारे लज्जाके मेरा अङ्ग अङ्ग सङ्कोचमें भर गया । मैं एकान्तमें ही रही ।

छुपकर मैं उसी वनमें पहुँची । वहाँ जङ्गलके शिवालयमें मैंने उन्हें देखा ।—

मदन—कहे जा कहे जा । मेरे सामने सङ्कोच न कर । मैं मनोज हूँ, मनके सारे रहस्योंको जानता हूँ ।

चित्राङ्गदा—अच्छी तरह याद नहीं है कि मैंने क्या कहा और क्या उत्तर सुना । अधिक न पूछिए भगवन् ! मैं स्त्री हूँ, तथापि पुरुषोंके समान ऐसी प्राणवाली हूँ कि लज्जा वज्ररूप होकर मेरे शिरपर टूट पड़ी तो भी वह मेरे टुकड़े टुकडे न कर सकी । मुझे स्मरण नहीं आता कि दुःस्वप्नसे विह्वल हुई सी मैं कैसे घर लौट आई । तपाये हुए शूलके समान उनकी अखीरी बात मेरे कानोंमें चुभने लगी कि " वराङ्गने, मैंने ब्रह्मचर्यका व्रत धारण कर रक्खा है । मैं पति-होनेके योग्य नहीं हूँ । "

पुरुषका ब्रह्मचर्य क्या ! धिक्कार है मुझे यदि मैं उसे नष्ट न कर सकूँ । मकरध्वज ! आप जानते हो कि कितने-कितने ऋषि मुनियोंने अपनी चिरकालकी तपस्यासे कमाये हुए फलको नारीके चरणतलमें विसर्जित किया है । क्षत्रियका ब्रह्मचर्य !—

घर पहुँच कर मैंने धनुषबाण तोड़ फेंका । यह पिणछसे कठोर हुआ करतल जो इतने समय तक मेरे अभिमानका कारण था मुझसे तिरस्कृत हुआ । इतने दिनोंके बाद मेरी समझमें आया कि यदि स्त्री हो कर भी मैं पुरुषके चित्तको न जीत सकी तो सारी विद्या वृथा है । अबलाओंके मृणाल-कोमल दो बाहु इन बाहुओंसे सोगुने बलवाले हैं । धन्य हैं वे परावलम्बिनी मूर्ख तन्वङ्गियाँ—साधारण नारियाँ—जिनके अपाङ्गपातसे वीर्यबल और तपस्याके फल पराभव पाते हैं ?—हे अनङ्गदेव, आपने पलभरमें मेरा सारा गर्व चूर कर डाला, मेरी सारी विद्या और बल अपने पैरोंमें झुका लिया । अब मुझे अपनी विद्या सिखलाइए, मुझे अबलाका बल दीजिए, निरस्त्रोंके अस्त्र-शस्त्रसे सज्जित कीजिए ।

मदन—मैं तेरी सहायता करूँगा । अयि शुभे, विश्वजयी अर्जुनको जीत कर मैं तेरे सामने कैद कर लाऊँगा । महासम्राज्ञी होकर अपनी

इच्छाके अनुकूल तू उसे दण्ड या पुरस्कार देना । विद्रोहीका शासन करना ।

चित्राङ्गदा—वक्त होता तो मैं अकेली ही उनके हृदय पर अधिकार जमा लेती और देवकी सहायता न चाहती । उनका साथी बनकर साथ रहती, रणक्षेत्रमें सारथी बनती और मृगयाके समय अनुचर हो पीछे पीछे फिरती रहती । छावनीमें रातभर तम्बूके बाहर खड़ी खड़ी पहरा देती, सेवककी तरह सेवा करती और क्षत्रियके आर्तत्राण-व्रतमें मैं उनकी सहायता करती।—एक न एक दिन आश्चर्यचकित होकर वे भी देख लेते और मन-ही-मन अवश्य समझ जाते कि 'यह बालक पूर्वजन्मका कोई चिरदास है और इस जन्ममें पूर्वोपार्जित पुण्यकर्म-की भाँति मेरे साथ ही जन्मा है'। धीरे धीरे मैं उनके हृदयद्वारको खोलती और उसमें सदाके लिए स्थान कर लेती। मैं यह जानती हूँ कि मेरा प्रेम रोने धोनेका प्रेम नहीं है; जो आजन्म विधवा, अपनी चिर मर्म-व्यथाको रातके समय, चुपचाप धीरजके साथ, अपने नयन-जलसे पोषण करती है और दिवसके प्रकाशमें मलिनतर हँसीमें उसे ढँक देती है, मैं उसके समान रमणी नहीं हूँ। मेरी कामना कभी निष्फल न होगी। एक बार भी यदि मैं अपनेको दिखला सकूँ तो अवश्य मैं उन्हें अपने हाथमें कर सकती हूँ। हाय विधाता, उस दिन मैं कैसी दिखलाई दी थी ! शरमसे सिमटकर थरथराती हुई एक शङ्कित नारी ! सुधबुध भूलकर प्रलाप करती हुई एक अबला ! परन्तु वास्तवमें क्या मैं वैसी ही हूँ ? हजारों स्त्रियाँ हाटबाट और घरोंमें केवल रोते रहनेकी अधिकारिणियाँ हैं, क्या उनकी अपेक्षा मैं कुछ विशेषता वाली नहीं हूँ ! परन्तु अपनी पहचान करा देना सहज बात नहीं है। इसके लिए बहुत धैर्य चाहिए; बहुत समय चाहिए । यह काम चिर-जीवनका काम है—जन्मजन्मान्तरका व्रत है। इसीलिए मैं आपके

द्वारपर आई हूँ, कठोर तप कर रही हूँ। हे भुवन विजयी देव, हे परम सुन्दर ऋतुराज, बिना अपराध विधाताके दिये हुए अभिशापको केवल एक दिनके लिए मिटा दो, इस नारीके कुरूपको हटा दो, मुझे परम सौन्दर्यकी छटा दो। मुझे एक दिनके लिए परम सुन्दरी बना दो, फिर तो मैं सदाके लिए सब कुछ सँभाल लूँगी।—जब पहले पहले मैंने उन्हें देखा था तब मेरे हृदयमें अनन्त वसन्त अपूर्व शोभासे खिल उठा था—सम्पूर्ण सौंदर्यसे प्रेम प्रकट हुआ था। मुझे इस बातकी बड़ी भारी लालसा उत्पन्न हुई थी कि यदि यही वसन्त देखते—देखते ही यौवन-समीरसे पुलकावली उत्पन्न करता हुआ लक्ष्मीके चरणशायी पद्मकी भाँति मेरे सारे शरीरपर खिल उठे—यदि यही प्रेम अपने सम्पूर्ण सौन्दर्यको मेरे अङ्ग अङ्गपर प्रकट करदे तो बड़ा ही आनन्द हो। हे वसन्त, हे वसन्तसखा! मेरी उस वासनाको पूर्ण करो, केवल एक दिनके लिए पूर्ण करो।

मदन—तथास्तु।

वसन्त—तथास्तु। केवल एक दिनके लिए ही नहीं, सारे वर्षतक वसन्तकी पुष्पशोभा खिलखिलाकर तेरे अङ्ग प्रत्यङ्ग पर छाई रहेगी—तेरा रूप तेरे आन्तरिक प्रेमके समान ही सौंदर्य भरा बना रहेगा।

मणिपुरके अरण्यका शिवालय।



अर्जुन

अर्जुन—हैं! मैंने क्या देखा? यह सत्य है या माया? निबिड़ निर्जनवनमें निर्मल सरोवरः—कैसा शान्त एकान्त स्थान है, जान पड़ता है कि मध्यान्हके सुनसान समयमें यहाँपर वनलक्ष्मी स्नान करती होगी—गम्भीर पूनमकी रातमें प्रसुप्त सरोवरके हरेभरे स्निग्ध तटपर अञ्चल हटा और निःशङ्क होकर सुखपूर्वक विश्राम करती हुई सोती होगी।

वहीं वृक्षोंकी आड़में मैं सायङ्कालके समय अपने बचपनसे प्रारम्भ कर जीवनभरकी गत घटनाओंको सोच रहा था। संसारकी उलट-पलट, इस मरणशील मानवके सुखदुःख, मूर्खता भरे खेलकूद, पूरी न होती हुई आशायें, जीवनका असन्तोष, अनन्त दारिद्र, इत्यादि न जाने किन किन बातोंके ध्यानमें पड़ा था। इतनेमें ही वृक्षराजिके अँधेरेसे धीरे धीरे बाहर निकल कर न मालूम कौन सरोवरकी सीढ़ि-योंके सफेद शिलातटपर आ खड़ी हुई। क्या अपूर्व रूप था! उसके कोमल चरणतलके नीचे धरातल कैसा निश्चल होगया था—पृथ्वीका अन्तःकरण मारे आनन्दके कैसा उछलने लगा था! जैसे उषाके सुनहले बादल पूर्व-पर्वतकी सफेद चोटियोंके निष्कलङ्क नग्न-सौन्दर्यको विकसित कर विलयको प्राप्त हो जाते हैं; वैसे ही वसन-समूह उसके अङ्गके लावण्यमें बड़े सुखसे विलीन होना चाहता था! सरोवरके तीरसे झुककर उसने बड़े कौतुकके साथ अपने मुखकी छाया देखी और चौंक उठी। छिनभरके बाद मन्द मन्द मुस्कराई। बायें हाथको हिलाया और बड़ी बेपरवाहीसे केशपाशको छुट्टा कर दिया। छूटे

हुए केश विह्वल होकर चरणोंके पास आ गिरे । अञ्चलको खिसका कर स्निग्ध स्पर्श और करुणा-भीने अपने अनिन्दित बाहुओंको देखने लगी । शिर झुकाकर खिले हुए देहतटमें यौवनके सुन्दर विकासको निरखने लगी, अपने गौर शरीरपर लाजभरी लालीकी झलमल करती हुई प्रभाको निहारने लगी, और सरोवरमें अपने दोनों पाँवोंको लटकाकर अपने चरणोंकी छबिका अवलोकन करने लगी ।—आश्चर्यकी सीमा न रही, मानो अपने आपको उसने पहलेपहल ही न देखा हो! जैसे श्वेतकमल जीवनभर मुँदा रहकर किसी प्रभातमें खिल उठे और वह ग्रीवाको झुकाकर नील सरोवरके जलमें पहलेपहल अपनी शोभाको देखकर आश्चर्यचकित हो जाय, वैसे ही यह आश्चर्यचकित होकर अपने आपको देखती रही । थोड़ी देरमें ही न जाने किस दुःखसे उसकी हँसी मुखकी गम्भीरतामें पलट गई । दोनों आँखें म्लान हो गईं । केशपाशको उसने बाँध दिया । अञ्चलसे देहको ढँक लिया । फिर औंधी साँस लेकर धीरे धीरे चली गई—मानो सुनहली साँझ, म्लान मुख करके धीरे धीरे अँधेरी रातकी ओर चली जाती हो ।

मैंने अपने मनमें सोचा कि रत्नगर्भा वसुन्धराने अपने सारे ऐश्वर्यको दिखला दिया । क्षरभरमें कामनाकी सम्पूर्णता दिखलाई दे गई । सोचने लगा कि इस सम्पूर्ण सौन्दर्यके सामने; कितने युद्ध, कितनी हिंसा, कितने आडम्बर, पुरुषके पौरुषगौरव, वीरत्वकी नित्यकीर्ति-तृषा, इत्यादि शान्त होकर भूमिपर लौटने लगते हैं, मानो सिंहवाहिनी भगवती शक्तिके भुवनवाञ्छित अरुण चरणतलमें वनराजसिंह लौट रहा हो । यदि एक बार उसे और—दरवाजेको किसने खटखटाया ?

(दरवाजा खोलकर)

यह क्या! वही मूर्ति आ गई! हे हृदय शान्त हो! (चित्राङ्गदासे)

सुमुखि ! डर न जाना, कोई डर नहीं है। मैं दुर्बल और भयभीतोंका भय हरनेवाला क्षत्रियकुलमें पैदा हुआ पुरुष हूँ।

चित्राङ्गदा—आर्य, आप मेरे अतिथि हैं। यह मेरा आश्रम है। मैं नहीं जानती हूँ कि अभ्यर्थना कैसे करूँ और किस तरह सत्कार कर आपको सन्तुष्ट करूँ।

अर्जुन—हे सुन्दरि ! तेरे दर्शनसे ही अतिथिसत्कार हो गया है। तेरे मधुरालापका सुनना मेरा परम सौभाग्य है। हाँ, मेरे मनमें एक बड़ा ही अचम्भा हो रहा है। यदि अपराध न समझा जाय तो मैं एक बात पूछना चाहता हूँ।

चित्राङ्गदा—निर्भय होकर आनन्दसे पूछिए।

अर्जुन—शुचिस्मिते ! किस महा कठोर व्रतकी साधनाके लिए हतभाग्य मर्त्यलोकको वञ्चित कर इस निर्जन देवालयमें ऐसी अनुपम रूपराशिको विसर्जित कर रही है।

चित्राङ्गदा—एक गुप्त कामनाको साधनेके लिए एकचित्त होकर मैं शिवपूजा कर रही हूँ।

अर्जुन—जगतभरकी कामनाका धन किसकी कामना कर रहा है। सुदर्शने ! पूर्वाचलसे अस्ताचल पर्यन्त मैंने पर्यटन किया है। सातों द्वीप और नवों खण्डोंमें, जहाँ कहीं जो कुछ सुन्दर, दुर्लभ, अचिन्त्य और महत्त्वपूर्ण है सब मैंने अपनी आँखोंसे देखा है। कह तेरी क्या इच्छा है—तू किसे चाहती है ? यदि तू मुझसे कहेगी तो मैं उसका पता दूँगा।

चित्राङ्गदा—मैं जिसे चाहती हूँ वह तीनों लोकमें सुप्रसिद्ध है।

अर्जुन—ऐसा पुरुष कौन है ? किसका कीर्ति-कलाप तेरे देवदुर्लभ

मनोराज्यके हृद्यासन पर बैठा है। जरा उसका नाम तो बतला कि मैं भी उस नामको सुनकर कृतार्थ होऊँ।

चित्राङ्गदा—उनका जन्म सर्वोत्तम नृपकुलमें हुआ है और वे स्वयँ सर्वश्रेष्ठ वीर हैं।

अर्जुन—मिथ्या कीर्ति एक मुखसे दूसरे मुखमें और दूसरेसे तीसरेमें, यों फैलती-फैलती संसारमें फैल जाया करती है; क्षण-स्थायी तुषार सूर्योदयके न होने तक उषाको ढँक देता है। हे सरले, इस दुर्लभ सौन्दर्य-सम्पत्तिसे मिथ्याकी उपासना न करना। कह! सुनूँ तो सही कि पृथ्वीके सर्वोत्तम नरपतिकुलका वह सर्वश्रेष्ठ वीर कौन है?

चित्राङ्गदा—पराई कीर्तिको सहन न कर सकनेवाले आप कौन संन्यासी हैं! कौन नहीं जानता है कि इस भुवनमें कुरुवंश सारे राजवंशोंका शिरोमणि है?

अर्जुन—कुरुवंश!

चित्राङ्गदा—हाँ,—उसी वंशमें अखण्ड यशोराशिवाला वीरेन्द्रकेसरी कौन है? सुना है उसका नाम?

अर्जुन—अच्छा, बतला तेरे ही मुखसे सुनना चाहता हूँ।

चित्राङ्गदा—भुवनविजेता गाण्डीव धनुर्धर अर्जुन! सारे जगतमेंसे इस अक्षय नामको लूट बड़े यत्नके साथ इस कुमारी-हृदयमें छुपा रक्खा है। ब्रह्मचारी, आपको यह अधीरता क्यों? तब क्या यह बात मिथ्या है? क्या अर्जुन नाम मिथ्या है? कहिए, अभी कहिए, यदि मिथ्या हो तो इसी समय हृदयको फाड़ कर उस नामको बाहर निकाल फेंकूँ। एक मुखसे दूसरे मुखमें और दूसरेसे तीसरेमें यों भले ही वह हवामें उड़ता उड़ता संसारमें फैला करे, उसके लिए नारीके अन्तःस्थलमें जगह नहीं है।

अर्जुन—वराङ्गने ! वही अर्जुन, वही पाण्डव, वही गाण्डीव धनुर्धर, वही भाग्यवान् तेरे चरणोंमें शरण आया है। उसकी नामवरी, उसकी प्रसिद्धि, उसकी वीरता, सच हो या मिथ्या; परन्तु जिस देवदुर्लभ लोकमें उसे स्थान दिया है वहाँसे उसे अलग न कर—पुण्य क्षीण हो जाने पर स्वर्गके गिरते हुए हतभाग्य तारकके समान उसे हृदयासनसे न गिरा।

चित्राङ्गदा—आप ही हैं पार्थ !

अर्जुन—हाँ देवि, तेरे हृदयद्वारका प्रेमार्त अतिथि पार्थ मैं ही हूँ।

चित्राङ्गदा—मैंने सुन रक्खा है कि अर्जुन बारह वर्षके लिए ब्रह्मचर्य धारण किये हुए है। क्या वही वीर-व्रतको भङ्गकर कामिनीकी कामना कर रहा है। हे संन्यासी, आप पार्थ हैं ?

अर्जुन—जैसे चन्द्रमा आसमानपर चढ़कर क्षणभरमें रातकी योगनिद्रा—तमोराशिको भङ्ग कर देता है वैसे ही तूने मेरे व्रतका भङ्ग कर दिया है।

चित्राङ्गदा—धिक् पार्थ धिक् ! मैं कौन हूँ, मुझमें क्या है, आपको क्या देख पड़ता है, मुझे आप क्या समझते हैं, किसके लिए आप अपनेको भुलाये देते हैं ? किसके लिए क्षणभरमें सत्य भङ्गकर अर्जुनको अनर्जुन किये देते हैं ? क्या मेरे लिए ? नहीं, इन नीलकमलके ऐसे नयनोंके लिए। दोनों हाथोंसे सत्य-बन्धनको तोड़ कर सव्यसाची नवनीतसे भी मुलायम इन दोनों बाहुपाशमें बंधा है ! कहाँ गई प्रेमकी मर्यादा ? कहाँ गया नारीका सन्मान ? हाय, इस तुच्छ देहने मेरा पराभव किया ! इस क्षण-स्थायी कपटवेशने अमर-अन्तःकरण पर विजय पाई ! अब मैं जान सकी हूँ, आपकी ख्याति मिथ्या है—शूरवीरता झूँठी है।

अर्जुन--हाँ, मैं भी अभी समझ सका हूँ कि मेरी ख्याति और शूरवीरता मिथ्या है। आज मुझे सातों लोक स्वप्नके समान जान पड़ते हैं। केवल तू ही नारी है। एक मात्र तू ही पूर्ण दिखलाई देती है। तू ही सबकुछ जान पड़ती है। विश्वभरका ऐश्वर्य तू ही समझ पड़ती है। सारी दरिद्रताका विनाश तू ही समझमें आती है और एक मात्र तू ही सारे परिश्रमका विश्रामस्थान जान पड़ती है। कौन जाने तुझे देखकर एकाएक यह बात क्यों ध्यानमें आये जाती है कि अन्धकार-के महार्णवमें जब आनन्दकिरणका प्रथम प्रभात हुआ था तब सृष्टि-कमल एक क्षण भरमें दिशादिशाओंमें खिल उठा था।--बहुत दिन भले ही लग जाँय, परन्तु और सब, धीरे धीरे, थोड़ा थोड़ा कर समझमें आ जाते हैं, किन्तु जब तेरी ओर देखता हूँ तभी तू सम्पूर्ण रूपसे दिखलाई देती है, कुछ कमी नहीं जान पडती, तथापि मैं तेरा पार नहीं पाता।--एक बार मृगयाक्रान्त होकर मैं दो पहरके समय प्यासा और तपाया हुआ कैलाश शिखर पर पुष्पोंसे सुशोभित हुए मानस सरोवरके तीरपर गया। देखा तो जान पड़ा कि उस सुर-सरोवरमें निर्मल मोतीके ऐसा स्वच्छ जल भरा हुआ है। स्पष्ट देख पड़नेपर भी कुछ पता नहीं है कि तल-देश कितना गहरा है। अनन्त गम्भीरता जान पड़ी। मध्यान्हके सूर्यकी किरणें स्वर्ण नलिनीके सुवर्ण मृणालके साथ मिल-कर अगाध और असीम जलमें मिल, जलकी हिलोरके साथ हिल रही हैं, मानों करोड़ करोड़ ज्वालामयी नागिनें लहरा रही हैं। जान पड़ा कि सहस्रकर भगवान् सूर्य हजार हजार उँगुलियोंसे इशारा कर यह बतला रहे हैं कि जन्मश्रान्त और कर्मशान्त मनुष्योंके चिर विश्राम करनेका अनन्त शीतल और सुन्दर स्थान यही है। वही निर्मल अत-ल-गम्भीरता मुझे तुझमें दिखलाई देती है। चारों ओरसे देव इशारा

कर मुझे समझा रहा है कि मेरे कीर्तिक्लिष्ट जीवनका निर्वाण तेरे अलौकिक सौंदर्यके आलोकमें ही है।

चित्राङ्गदा—नहीं नहीं, पार्थ, मैं ऐसी नहीं हूँ। यह देवका इन्द्र-जाल है। जाओ जाओ लौट जाओ, लौट जाओ वीर! मिथ्याकी उपासना न करो! मिथ्याके चरणोंमें अपने शौर्य, वीर्य और महत्त्वकी बलि न दो। जाओ लौट जाओ।

तरुतलमें चित्राङ्गदा ।

चित्राङ्गदा—हाय हाय, क्या मैं उसे फेर सकती हूँ! उस वीर हृदयकी थर थर काँपती हुई व्याकुलता—तृष्णार्त, कंपती हुई चिनगारियाँ उड़ानेवाली होमाग्निकी शिखा ही हो मानो; वह नयनोंकी दृष्टि मानो अन्तरका बाहुपाश होकर मुझे बाँधे लेती हो, वह सन्तप्त हृदय सारे शरीरको तोड़ मरोड़कर बाहर निकले आ रहा हो, वह आक्रन्दन ध्वनि कानोंमें भर गई हो, क्या मैं इस तृष्णाको लौटा दे सकती हूँ?

(वसन्त और मदनका प्रवेश ।)

हे अनङ्गदेव, यह मुझे किस रूपहुताशने घेरली, जले जाती हूँ और जलाये देती हूँ।

मदन—कह तान्वि, कलके हाल कह । सुननेकी बड़ी भारी इच्छा है कि मेरे छोड़े हुए पुष्पबाणने कैसा काम सिद्ध किया ।

चित्राङ्गदा—कल सायङ्कालको सरोवरके तृणपुञ्जपर वासन्तिक फूलोंको फैलाकर मैंने फूलोंकी सेज बिछाई थी । हारी थाकी मैं बाये हाथपर अपने अवसन्न शिरको रखकर वहीं लेट गई । मन-ही-मन दिनकी घटनाको स्मरण करने लगी । अर्जुनके मुखसे जो स्तुति सुनी थी और उनको जो अनुचित बचन मैंने कहे थे उसकी याद आ रही थी । सारे दिनमें जो अमृत इकट्ठा किया था उसमेंसे एक एक बूंद करके सोते-सोते अकेली पान कर रही थी । पूर्व जन्मकी बातकी तरह अपना सारा इतिहास भूल गई थी । मानो मैं राजकुमारी नहीं हूँ । मातापिता रहित एक प्रभातमें खिल उठनेवाला जङ्गली फूल ही हूँ । केवल एक प्रभात जिसकी परम आयु है । इसी समयमें भ्रमरका गुञ्जार सुन लेना

होगा, वनका आनन्दमर्मर शब्द सुन लेना होगा, फिर नीलाकाशसे दृष्टिको हटा और गर्दनको झुकाकर हवाके झोंकोंसे चुपचाप—बिना उफ किये खिर पड़ना होगा । बस आदि अन्त हीन यही मेरी उड़-जानेवाली कुसुम-कहानी है ।

वसन्त—एक प्रभातमें तो सुन्दरि! अनन्त जीवन प्रकट होते हैं।

मदन—जैसे सङ्गीतकी थोड़ीसी तानमें अनन्त कहानी गुञ्जार कर उठती हैं। अच्छा आगे कह ।

चित्राङ्गदा—मैं इस तरह सोच ही रही थी कि अङ्ग-अङ्गमें दक्षिण पवनने नींदके हिलोरे डालना शुरू किया । सप्तपर्ण शाखा पर खिली हुई मालतीलताने मेरे गोरे गोरे अङ्ग पर दूसरे ही पुष्पोंकी वर्षा कर जहाँ तहाँ चुम्बन लेना शुरू किया । पुष्पोंने मेरे केशकलाप, चरण-तल और स्तनतट पर अपनी चिरविश्रामकी सेजें बिछा लीं ।

इस तरह सुध-बुध-हीन दशामें कुछ समय व्यतीत हो गया । इसी समय भरी निद्रामें न जाने किस समय अनुभव होने लगा कि किसीकी मुग्ध दृष्टि दस उँगुलियोंकी भाँति मेरे निद्रालस शरीरको रभसलालसासे छू रही है । मैं चौंक कर जग पड़ी ।

देखा कि संन्यासी टकटकी लगाये हुए, मेरे पैरोंकी ओर प्रति-मूर्तिके समान खड़ा हुआ है ।—पूर्वाचलसे चल कर बारसका चाँद धीरे धीरे आया और उसने मेरे प्रफुल्ल नवीन और स्वच्छ नग्न सौन्दर्य पर अपनी सारी शीतल चाँदनीको छिटका दिया । तरुवृन्द पुष्प-गन्धसे पूर्ण थे । झिल्लीरवसे निद्रा तन्द्रामग्न थी ! स्वच्छ सरोवरमें चन्द्रकिरणकी अङ्कपित कान्ति पड़ रही थी । पवन सो रहा था । माथे पर चाँदनीका प्रकाश छाया हुआ होने पर भी अपने पत्र-पल्लवोंके भीतरके घनान्धकारका भार धारण कर अटवी स्तब्ध हो रही थी । वह दण्डधारी ब्रह्मचारी दीर्घकाय वनस्पतिके समान चित्र लिखा सा होकर

खड़ा हुआ था, मानो मेरी छायाका सहचर ही हो। पहले पहल नींदके उड़ जाने पर मैंने चारों ओर ताका तो भास हुआ कि कहीं किसी प्रदोषके समय मेरा जीवन छूट गया है और निर्जन—थोड़ेसे प्रकाशवाली वैतरणीके तीरपर किसी एक अनुपम निद्रालोकमें स्वप्नजन्मका लाभ हुआ है। मैं उठ खड़ी हुई। ढीले वसनके समान, मिथ्या शरम-सङ्कोच पदतलमें खिसक पड़े। सुनाई दिया "प्रिये प्रियतमे!" गम्भीर आव्हानसे जन्म जन्म—सैकड़ों जन्म मेरे एक शरीरमें जागृत हो उठे। मैंने कहा "लो, लो, जो कुछ है, सब लो, मेरे जीवनवल्लभ" और अपनी भुजवल्लरीको आगे फैला दिया।—चन्द्रमा जङ्गलमें छुप गया। अँधेरेसे जमीन छा गई। असहनीय आनन्दमें स्वर्ग-मर्त्य, देश-काल, सुख-दुःख, जीवन-मरण सब, अचेत हो पड़े।...... प्रभातकी प्रथम किरण और विहङ्गके प्रथम सङ्गीतके साथ, बायें हाथ पर जोर देकर धीरे धीरे मैं शय्यापर उठ बैठी। देखा कि वीरवर सुखकी नींद सो रहे हैं। अधरोंपर प्रातःकालकी चन्द्रकलाके ऐसी शान्त स्मितकी रेखायें लहरा रही हैं मानो रजनीके आनन्दका शीर्ण अवशेष सुहा रहा है। समुन्नत ललाट पर अरुणकी आभा गिर रही है, मानो मर्त्यलोकमें नवीन उदयाचल पर नवीन प्रतापका सूर्योदय होनेवाला है। निसास डाल मैं सेजको छोड़कर उठी। मालतीके लताजालको बड़ी सावधानीसे झुकाया और सोते हुए मुख पर पड़ती हुई किरणोंकी आड़में परदा कर दिया।—देखा तो चारों ओर वही पूर्वसे परिचित प्राचीन पृथ्वी देख पड़ी। मुझे अपना भान हुआ। अपनी छायासे भयभीत होकर जैसे हरिणी दौड़ती है वैसे ही मैं नवीन प्रभातके बरसाये हुए शैफाली कुसुमोंसे छाई हुई वनस्थली पर होकर एकदम दौड़ी। निर्जन लतामण्डपके नीचे जा बैठी। दोनों हाथोंसे मुहँ ढाँक कर रोना चाहा, परन्तु न रो सकी।

मदन—हाय, मानवनन्दिनि ! स्वर्गीय सुखके दिनका अपने हाथों-से रस निकाल कर पृथ्वीकी एक रातको भरी। बड़े यत्नसे तेरे अधरके पास वह रसकी प्याली ला रक्खी। नन्दनवनकी सौरभसे सुरभित हुई और रतिसे चुम्बन पाई हुई शचिके मधुर प्रसाद-सुधाका तुझे पान कराया। फिर यह रोना कैसा !

चित्राङ्गदा—किसे पान कराया देव! किसकी प्यास बुझाई। वे वे चुम्बन, वे वे प्रेम-प्रसंग अब भी मेरे अङ्गअङ्गमें व्याप्त होकर बीणाके झङ्कारके समान प्रकंपन उत्पन्न कर रहे हैं! वे तो मेरे नहीं हैं! बहुत समयके साधनके प्रभावसे केवल घड़ीभरका प्रथम मिलन हुआ। किसने मुझे धोका दिया? किसने मेरे संयोगमें विच्छेद कर दिया। पूर्ण रीतिसे खिल चुके हुए पुष्पकी भाँति यह मेरा मायामय लावण्य उस चिर दुर्लभ प्रथम संयोगकी सुख-स्मृतिके साथ-ही-साथ खिर पड़ेगा। अन्तरकी दरिद्र यह नारी देहकी भी दरिद्र हो जायगी। मकरध्वज, आपने किसी महा राक्षसीको छायाके समान मेरी अङ्ग-सहचरी कर डाली। क्या अन्याय है? क्या लूट खसोट है? चिर कालसे तृष्णासे आतुर हुए लोलुप ओठोंके पास आये हुए चुम्बन रसका वही पान कर गई। वह प्रेमभरी निगाह कैसी है कि जहाँपर गिरती है, जिस अङ्गपर गिरती है वहीं वासनाकी रङ्गीन रेखाओंके निशान बना देती है। रातभर तप करनेवाले कुमारीके हृदय पद्मपर वह दृष्टि सूरजकी किरणकी भाँति गिरती है; परन्तु वह राक्षसी भुलावा देकर उस प्रेमभीनी दृष्टिको भी अपनाये लेती है।

मदन—कलकी रात तेरी व्यर्थ ही गई? आशाकी नाव किनारे पहुँचते पहुँचते पीछी लौट गई। क्या तरङ्गके आघातसे ही पीछी लौट गई?

चित्राङ्गदा—कल रातको मेरे चित्तमें कोई चिन्ता न थी। स्वर्ग सुख इतना पास आ गया था कि मैं तनमनकी सुध भूल गई। इस बात-का तो मुझे भान भी न रहा कि स्वर्ग सुख पा भी लिया है या नहीं। आज प्रातःकाल उठते ही जान पड़ने लगा कि निराशा और धिक्कारके मारे फटकर हृदयके भीतर ही भीतर टुकड़े हुए जाते हैं। अब रातकी एक एक बात याद आ रही है। बिजली पड़नेके ऐसी वेदना पैदा करती हुई चेतना, क्या भीतर और क्या बाहर, सौतका रूप धारण कर रही है। मैं इसे भूल भी नहीं सकती हूँ। मेरी यह काया भी सौतसी हो गई है। इसी सौतको अपने हाथोंसे बड़े जतनके साथ सजा सजा कर अपने मनोरथके तीर्थ वासर-शयनपर प्रतिदिन भेजना पड़ेगा। निरंतर साथ रह कर क्षण क्षणमें होते हुए इसके आदर-सन्मानको अपनी आँखोंसे देखना पड़ेगा। ओफ़्! देहके सुहागसे अन्तःकरण हिंसानलमें जलता रहेगा! ऐसा शाप मनुष्यलोकमें किसे मिला होगा? हे अनङ्ग, अपने वरको लौटा लो।

मदन—यदि लौटा लूँ—छलके आवरण दूर हो जानेसे तू पालेसे मारी हुई पत्रपुष्पहीन हेमन्तकी लताकी ऐसी हो जायगी, कल प्रातः कालमें ही पार्थके सामने तू मारे लाजके कौनसा मुँह लेकर जायगी? आनन्दकी पहली घूँटका स्वाद चखा और मुखसे सुधापात्रको हटाकर उसको जमीनपर डालकर टुकड़े टुकड़े कर डालनेसे अर्जुन कैसा चौंकेगा, कैसा आघात पावेगा और कैसा क्रोध भरी दृष्टिसे तेरी ओर देखेगा!

चित्राङ्गदा—ऐसा होना भी अच्छा है देव! इस कपट-वेश-धारि-णीकी अपेक्षा मैं स्वाभाविक वेशवाली सौगुनी अच्छी हूँ। मैं अपने असली वेशमें प्रकट होऊँगी।

यदि मैं उन्हें पसन्द न पड़ूँ, यदि वे मुझे छोड़कर चले जायँ, और यदि मैं हृदय फटकर मर भी जाऊँ तो भी मैं मैं ही रहूँगी। इन्द्र सखा ! ऐसा होना ही अच्छा है ।

वसन्त—अच्छा मेरी बात सुन । सब पुष्पोंके खिले बाद ही फल लगते हैं । यथा समय तेरे तापक्लिष्ट लावण्यकी पत्तियाँ स्वयं झड़ जायँगी । तब तू अपने आप आत्मगौरवमें प्रकट हो जायगी । उस समय तुझे देखकर अर्जुन समझेगा कि मुझे नया सौभाग्य प्राप्त हुआ है । अभी तो जा लौट जा, वत्से ! यौवनका उत्सव मना ।

अर्जुन और चित्राङ्गदा

चित्राङ्गदा—क्या देख रहे हो वीर ?

अर्जुन—पुष्पवृत्तको लेकर कोमल उँगुलियाँ माला गूँथ रही हैं, मानो निपुणता और सुघराई दोनों बहनें अनन्त उल्लासमें आकर उँगुलियोंके अग्रभागपर चपल नृत्यकर रही हैं सो देख रहा हूँ। देखता हूँ और सोचता हूँ.

चित्राङ्गदा—क्या सोचते हो ?

अर्जुन—प्रिये, मैं सोच रहा हूँ कि इन सुन्दर हाथोंसे पकड़कर स्पर्शके रससे तू मेरे इस प्रवासके जंगली दिनोको सरस कर देगी, उनसे एक ऐसी ही मनोहर माला गुँथेगी और मैं उस अक्षय आनन्दके हारको मस्तकपर धारण कर घर लौट जाऊँगा।

चित्राङ्गदा—इस प्रेमके भी क्या कोई घर है ?

अर्जुन—घर नहीं है ?

चित्राङ्गदा—नहीं । घर ले जाओगे ? घरकी तो बात ही न करो । घर तो चिरस्थायी वस्तुके लिए होता है । जो कुछ नित्य हो उसे घर ले जाना । जँगली फूल जब सूख जायगा तब उसे घरमें न जाने किस ठौर पत्थरपर फेंक दोगे। उसकी अपेक्षा तो यही अच्छा है कि सायङ्कालके समय मेरी कुसुमलीला समाप्त होनेपर काननके सो सो सुखोंकी समाप्तिके साथ ही साथ मैं अरण्यके अन्तःपुरमें समाप्त हो जाऊँ, जहाँपर रोज रोज अंकुर नष्ट होते हैं, पत्तियाँ झड़ती हैं और क्षणिक जीवन क्षणक्षणमें प्रकट होते और लय पाते हैं। इससे किसीके मनमें कोई खेद न रहेगा।

अर्जुन—बस यही है हमारा प्रेम ?

चित्राङ्गदा—हाँ यही है । इससे विशेष कुछ नहीं है । इसमें दुःख क्या है वीरवर ? आलस्यके समयमें जो कुछ अच्छा मालूम हो उसका उपभोग उतने ही समयमें करके उसे छोड़ देना चाहिए । सुखको विदा करनेके मार्ग रोक दिये जायँ तो क्षणभरमें सुख दुःखमें परिवर्तित हो जाता है । जो कुछ जितने समयके लिए है उसे उतने ही समयतक अङ्गीकार करो । कामनाके उदयकालमें जो कुछ प्राप्त हुआ हो उससे अधिककी आशा अवसान कालमें न करो ।

दिन बीत गया । मैं थक गई हूँ वीरवर ! मुझे अपनी बाहुओंका सहारा दो । मिथ्या असन्तोषको दूरकर हमारे अधरोंमें सुखसम्मिलन-की सन्धि होने दो । प्रणयमें सदाकी हार अमृतसनी होती है, आओ हम एकदूसरेको बहुपाशमें जकड़कर कैद कर लें ।

अर्जुन—प्रियतमे, सुन । वनके पासके गाँवोंमें शङ्ख और झालर घण्टा बज उठे, जान पड़ता है कि आरती हो रही है ।

मदन और वसन्त ।

मदन—सखे, मैं पञ्चबाण हूँ । मेरे एक बाणमें हँसी है, एकमें रोना है, एकमें आशा है, एकमें भय है और एकमें संयोग-वियोग, आशा-निराशा, सुख-दुःख और उल्लास-भय एक साथ जड़े हुए हैं ।

वसन्त—मित्र अब तेरी-मेरी न निभेगी । मैं बहुत थक गया हूँ । मुझे जाने दे । और कितने समय तक मैं तेरी लगाई हुई आगको पङ्खेकी हवा झलझल कर दिनरात सुलगाता रहूँ । मारे नींदके मेरी आँखें बन्द होती जाती हैं। पङ्खा गिर पड़ता है और सुलगाई हुई आग कजलाये जाती है । मैं चौंक उठता हूँ और फिर फूँकें मार मार कर आगको चेताता हूँ । मित्र, अनङ्ग, अब बस कर, अपने रण-रङ्गको पूरा कर । मुझे विश्राम लेने दे ।

मदन—हाँ जानताहूँ तू तो सदाका चञ्चल है । सदाका तू बालक ही है । बिना किसी प्रकारके बन्धनके भूलोक और द्युलोकमें खेल करता फिरता है । जिसे बड़े यत्नसे बहुत समयमें सुन्दर कर पाता है उसीको धूलमें मिलाकर तुरन्त चल देता है; पीछा फिर कर देखता भी नहीं । तेरी पाँखोंकी हवाके थोड़ेसे वेगसे ही आनन्दके चञ्चल दिन न जाने कहाँके कहाँ हूहा करते हुए फौरन उड़ जाते हैं । अब बहुत दिन बाकी नहीं हैं । आनन्द ही आनन्दकी बेखबरीमें वर्षभर पूरा होता आया है ! जल्दी न मचा ।

जङ्गलमें अर्जुन।

अर्जुन—आज प्रातःकाल ही नींदसे जगा तो ऐसा अनमोल रत्न हाथ लगा कि मानो स्वप्नमें कोई निधि मिली हो। उस रत्नको रखनेके लिए जमीनकी मिट्टी पर कहीं स्थान नहीं है, कोई मुकुट ऐसा नहीं है जिसमें जड़कर यह रत्न रक्खा जा सके और न कोई ऐसा सूत ही है कि जिसमें इस रत्नको पिरो दे। मैं ऐसा अधम पुरुष नहीं हूँ कि इस रत्नको यों ही फेंक जाऊँ। इसे पाकर बहुत समय-से क्षत्रिय कर्तव्य-हीन हो रहे हैं; दिनरातके बन्धनमें पड़ गये हैं।

(चित्राङ्गदाका प्रवेश)

चित्राङ्गदा—क्या सोच रहे हो महाभाग?

अर्जुन—शिकारकी बात सोच रहा हूँ। वह देख गिरिपर खूब वर्षा हो रही है, वनपर घनघोर घटा छाई हुई है। नदीनाले उमड़े हुए हैं। कलकल नाद तटोंकी तर्जना करते हुए सीमाको पार कर रहे हैं। याद आ रहा है कि ऐसे बरसाती मौसममें पाँचों भाई मिलकर चित्रकारण्यमें शिकार खेलनेको जाया करते थे। धूप नामको भी न होती थी। काली घटाओंकी अँधेरी छाई रहती थी। हम दिनभर ऐसे समयको बड़े उल्लासमें बिताया करते थे। मेघकी मन्द्र ध्वनिसे हमारे हृदय नाच उठते थे। वृष्टिकी झिरमिराहट और निर्झरोंकी झरमराहटके कारण मृगगण सावधानीसे रक्खे हुए हमारे पदोंकी आहटको नहीं सुन पाते थे। चीते और बाघ पङ्किल मार्गपर अपने पञ्जोंके निशान छोड़कर हमें अपने स्थानका पता दे जाते थे। शिकार हो चुकनेपर हम पाँचों भाई तैरनेकी शर्त कर वर्षासे उभरी हुई नदीको तैरकर पार हो जाते थे। इस समय भी वैसा ही करनेकी मनमें ठानी है।

चित्राङ्गदा—हे शिकारी! जिस शिकारका खेलना शुरू किया है पहले उसे तो पूरी होने दो।—तब क्या आपको यह विश्वास हो गया है कि यह सुवर्णमयी मायामृगी आपके हाथमें आ गई? नहीं ऐसा कभी न समझो, ऐसी बात हो ही नहीं सकती। यह जङ्गली हरिणी स्वयं अपनेको अपने हाथमें नहीं रख सकती। स्वप्नकी भाँति, न जाने कब यह किधरकी-किधर चौंककर चौकड़ी भर जा सकती है। क्षणभरके खेलको सहन कर सकती है, चिरकालके बन्धनको नहीं उठा सकती। देखो, आँख उठाकर इस मेघ और हवाकी ओर देखो। घनश्याम बरस बरसकर हजार हजार तीर हवाकी पीठपर फेंक रहा है, तो भी वह हवा-हरिणी अक्षत है, अजेय है और छलाँगे भरती हुई उड़ती ही चली जा रही है।—नाथ! इस बरसाती मौसममें आपकी और मेरी भी यही मृगयाकी क्रीड़ा है। प्राणपणसे चञ्चलाका शिकार कीजिए, कसर न रह जाय। जितने अस्त्रशस्त्र आपके पास हों, जितने शर आपके तूणमें हो, सबको एक साथ चलाइए। अन्धकार हो या प्रकाश हो, मूसलधार वर्षा हो या चमचमाहट करती हुई बिजली हो, कुछ भी हो; मेघाच्छन्न जगत्‌में यह मायामृगी तो छूटकर स्वच्छन्दतासे बे-रोकटोक दौड़ती ही रहेगी।

मदन और चित्राङ्गदा ।

चित्राङ्गदा—हे मन्मथ, मेरे अङ्ग-अङ्गमें तुमने न जाने क्या भर दिया जो तीव्र मद्यके समान मेरे रक्तमें मिलकर मुझे मदोन्मत्त किये देता है। खुले बाल और उच्छ्वसित वेशसे मैं मृगीकी नाईं अपनी गतिके गर्वसे उन्मत्त होकर पृथ्वीपर चौकड़ियाँ लगा रही हूँ। मेरे धनुर्धर घनश्याम शिकारीको जङ्गल-जङ्गल और मार्ग मार्गपर भटका भटका कर थका रही हूँ और उसे निराश करती हुई अपने निर्दयी विजयके सुखसे कुतूहलकी हँसी हँस रही हूँ। इस खेलके भङ्ग हो जानेके भयसे काँप रही हूँ। एक घड़ीभर भी स्थिर हो जाऊँ तो रोनेके मारे हृदयके टुकड़े टुकड़े होकर गिर पड़ें।

मदन—रह रह ! इस रङ्गका भङ्ग न कर। यह रङ्ग तो मैंने जमाया है। बाण चलने दे, प्राणोंको बिंधने दे। आज नवीन वर्षाके समय जङ्गलमें मेरी शिकार है। दे, दे, उसे थका दे, पदानत होने दे। दृढ़ पाशमें बाँध, दया न खा, हँसते-हँसते अङ्ग-अङ्गको जर्जर कर दे,। शिकारमें दया कैसी ! अमृत मिले हुए जहरसे बुझे हुए वचन बाणोंका हृदयपर वार कर।

अर्जुन और चित्राङ्गदा ।

अर्जुन—प्यारी, क्या तेरे कोई मकान नहीं है ? जिसमें तेरे प्यारे परिजन वियोगके मारे कल्पान्त कर रहे हों ! जिस आनन्दभवनको नित्यस्नेह-सेवासे तूने सुधामय कर रक्खा था वहाँका दीपक बुझ गया हो ! क्या कोई ऐसा मकान नहीं है जहाँपर तेरी बचपनकी स्मृतियाँ रोती हुई पहुँचें !

चित्राङ्गदा—यह सवाल क्यों ? क्या आनन्द लूट चुके ? आप जो कुछ देख रहे हैं मैं वही हूँ । इससे अधिक मेरा कोई परिचय नहीं है । प्रातःकालके समय किंशुकके पत्रकी नोकपर जो हिमकी बूँद लटकती रहती है उसका भी क्या कोई नामधाम होता है ! उससे भी क्या परिचयका प्रश्न किया जा सकता है ? आप जिसे प्यार करते हो वह भी ऐसा ही एक नाम-धाम-हीन ओसका मोती है ।

अर्जुन—क्या इस पृथ्वीपर उसके लिए कोई बन्धन नहीं है ? क्या वह स्वर्गसे ढलक पड़ी हुई एक बूँद मात्र है ?

चित्राङ्गदा—हाँ, ऐसा ही है । जङ्गलके फूलको क्षणभरके लिए वह अपनी उज्ज्वलता समर्पण कर रही है ।

अर्जुन—तभी तो मेरे प्राणोंमें हो रहा है कि यह गई यह चली, न मुझे तृप्ति होती है और न शान्ति ही मिलती है । ओ मेरे दुर्लभ धन, मेरे बिलकुल पास आ जा । अन्यान्य मनुष्योंकी भाँति, नाम-धाम, घर-बार जाति-गोत्र, देह, मन, वचन आदिके हजार हजार बन्धनोंमें बँध जा । ऐसी तरकीब कर कि तेरे अङ्गअङ्गसे लिपटकर मैं निर्भयता-पूर्वक रह सकूँ । क्या तेरा कोई नाम नहीं है ? यदि नहीं तो, भला मैं कौनसे प्रेममन्त्रसे अपने हृदय-मन्दिरमें तेरे नामकी

माला जपूँगा! तेरा कोई गोत्र नहीं है? यदि नहीं तो फिर कौनसे मृणालसे इस पद्मिनीको बाँध रक्खूँगा?

चित्राङ्गदा—नहीं नहीं कुछ नहीं है। जिसको बाँध रखना चाहते हो वह बन्धनको जानती ही नहीं है। वह सुनहली बदली है, फूलोंकी खुशबू है, लहरोंकी गति है।

अर्जुन—जो ऐसेको प्यार करे वह तो निश्चय अभागी है! प्रेमके हाथमें आकाश-कुसुम न दो प्रियतमे, उसे कुछ ऐसा धन दो कि जिसे सुख-दु:खके भले बुरे दिनोंमें हृदयसे चाँप कर रक्खा जा सके।

चित्राङ्गदा—अभी तो पूरा एक वर्ष भी न हुआ, क्या इतनेमें ही उपराम हो गया? हाय हाय! अब मेरी समझमें आया कि पुष्पोंकी परमायु जो थोड़ीसी होती है यह उनपर देवताका बड़ा भारी आशीर्वाद है। यदि बीते हुए वसन्तके खिरे हुए कुसुमोंके साथ ही मेरे इस शरीरका पतन हो जाता तो आदरसे इसका अन्त होता। विशेष दिन नहीं हैं पार्थ! जितने कुछ दिन इस शरीरमें सौन्दर्यछटा है उतने ही दिनमें उसके आनन्द मधुका अच्छी तरह पान कर लो—मधुको नि:शेष कर दो, कुतुहल पूर्वक अपनी आशाको पूरी कर लो। फिर स्मृतिके भुलावेमें पड़ बार बार लौट लौटकर न आना, अपनी दशा उस भौंरेकी सी न बनाना जो कल सायङ्कालके समय छिन्नकुसुम माधवीलताके आसपास पराग रससे अपनी प्यासको बुझानेके लिए मँडराता फिरता था।

वनवासी और अर्ज़ुन

वनवासी—हाय, हाय! अब कौन रक्षा करेगा?

अर्जुन—क्यों, क्या हुआ?

वनवासी—मूसलधार वर्षाके समय पार्वतीय जलौघ जिस वेगसे आता है उसी वेगसे, गाँवोंका विनाश करनेके लिए डाकुओंका दलका दल उत्तरपर्वत परसे निकल कर बढ़ा चला आ रहा है।

अर्जुन—इस राज्यमें क्या कोई रक्षक नहीं है?

वनवासी—दुष्टोंका दमन करनेवाली राजकुमारी चित्राङ्गदा थीं। उनके आतङ्कसे राज्यभरमें यमके भयके सिवा और कोई भय नहीं था। परन्तु सुना है कि वे अज्ञातभ्रमण व्रतको धारण कर तीर्थ-यात्रा करनेको गई हुई हैं।

अर्जुन—क्या इस राज्यकी रक्षक एक स्त्री है।

वनवासी—हाँ, एक ही देहसे वे अनुरक्त प्रजाकी मा-बाप दोनों है। स्नेहमें राजमाता और बलवीर्यमें महाराज है।

(चित्राङ्गदाका प्रवेश।)

चित्राङ्गदा—स्वामी, क्या सोच रहे हो?

अर्जुन—राजकुमारी चित्राङ्गदा कैसी है, इस बातपर विचार कर रहा हूँ। सैकड़ों मनुष्योंके मुखसे उसकी नई नई कहानियाँ और नये नये वृत्तान्त सुनता हूँ। इसीसे विचार उठ रहा है कि वह कैसी होगी!

चित्राङ्गदा—वह तो कुरूप और कुत्सित है। (हाथके इशारेसे बताती हुई) ऐसी बाँकी भौंहें उसकी नहीं हैं और नहीं है उसकी ऐसी जादूभरी काली कीकियाँ। उसके बलवान और कठिन भुज लक्ष्यवेध करना जानते हैं, परन्तु इस तरह कोमल नागपाशमें वीर शरीरको जकड़ नहीं सकते।

अर्जुन—परन्तु मैंने तो सुना है कि वह स्नेहभावमें नारी है और बलवीर्यमें पुरुष है !

चित्राङ्गदा—हरे हरे ! यही तो उसका दुर्भाग्य है ! स्त्री यदि स्त्री हो, केवल वसुन्धराकी शोभा हो, कान्तिमयी हो, प्रेम भरी हो, अनेक प्रकारके मिसकर सो सो विभ्रम करती हो; रोते-हँसते उठते-बैठते आड़ी-टेढ़ी होते भाँति भाँतिकी भावभङ्गी दिखलाती हो, और स्नेह सेवाके सुहागसे सदा भरीपूरी होकर विलसती हो तो उसका जन्म सफल है; कीर्ति और बलवीर्यकी शिक्षासे उसको क्या आनन्द मिल सकता है ? यदि आप उसे कल पूर्णानदीके तटपरके उस जङ्गलके शिवालयमें देख पाते तो हँसकर चले जाते !—हाय हाय ! आज आपको स्त्रीके सौन्दर्यपर ऐसी अरुचि हो गई कि आप स्त्रीमें पौरुषका मजा खोजनेको तत्पर हो रहे हो !

आओ नाथ ! देखो शैलगुहाके पास वह गहरी छाया देख पड़ती है। वहींपर मैंने कोमल कोमल हरी-पीली पत्तियोंको चुन और उन्हें झरनेके जलसे शीतलकर मध्यान्ह-शय्या बनाई है !—सुनो, तरुपल्लवोंकी गाढ़ छायामें बैठे हुए कबूतर क्लान्त कण्ठसे 'गटरगूँ गटरगूँ' करते हुए कह रहे हैं कि समय जा रहा है, छायाके नीचे होकर ही कलकल करती हुए नदी बही जा रही है। शिला-खण्डके एक एक स्तरकी, सरस स्निग्ध जलार्द्र और श्याम सैवार अपने कोमल अधरसे नयनोंका चुम्बन कर रही है। आओ नाथ, उस विरल विश्रामके स्थान पर चलो।

अर्जुन—आज नहीं प्यारी।

चित्राङ्गदा—क्यों नाथ ?

अर्जुन—सुना है कि डाकुओंके झुण्डके झुण्ड गाँवोंका विध्वंस करनेको चले आ रहे हैं, मैं तो गरीबोंकी रक्षा करूँगा।

चित्राङ्गदा—प्रभो, आप इसकी कोई चिन्ता न कीजिए। तीर्थयात्राको जानेके पहले ही राजकुमारी चित्राङ्गदा सब ओर दिशा दिशामें बड़े होशियार सिपाहियोंके पहरे बिठला गई है और भयके जितने मार्ग थे उन्हें बुद्धिमानीके साथ बन्द कर गई है।

अर्जुन—फिर भी प्यारी, मुझे जानेकी आज्ञा दे। मैं अपने कर्तव्यका पालन कर अभी थोड़ी देरमें लौट आता हूँ। बहुत दिनोंसे ये क्षत्रिय बाहु अलसा रहे हैं, इन दोनों क्षीणकीर्ति भुजाओंको फिर नये गौरवसे भर लाता हूँ। तब ये तेरे मस्तक नीचे रखने योग्य उपधान (सिराहना) हो जायँगे।

चित्राङ्गदा—यदि न जाने दूँ, यदि बाँध रक्खूँ तो क्या बाहुबन्धनको तोड़कर चले जाओगे? अच्छा जाना ही हो तो जाओ; परन्तु याद रखना कि एक बार बेल टूटी कि टूटी; फिर जुड़ती नहीं है। यदि तृप्त हो गये हो तो जाओ, मैं मना नहीं करती; किन्तु जो तृप्त नहीं हुए हो तो स्मरण कर लो कि सुखलक्ष्मी चञ्चल है; वह किसीके लिए बैठी नहीं रहती। वह किसीकी सेवा करनेवाली दासी नहीं है। विपरीत इसके, जितने स्त्री-पुरुष हैं सब उसीकी सेवा करनेवाले हैं। जितने दिन वह प्रसन्न रहती है उतने दिन भी स्त्री-पुरुष बड़ी सावधानीके साथ उसे अपनी आँखोंके सामने ही रखते हैं और वह उन उन स्त्रीपुरुषोंको रातादिन अपनी सेवामें खड़ेके खड़े रखती है। जिस सुखकी कलीको छोड़कर आप जाओगे सायङ्कालको कर्मक्षेत्रसे लौटनेपर आपको जान पड़ेगा कि उस कलीकी सारी पँखड़ियाँ धूलमें झड़ पड़ी हैं। उस समय आपको अपना सारा कर्म व्यर्थ जान पड़ने लगेगा और जीवनभरके लिए अतृप्तिका एक पछतावा खड़ा हो जायगा। आओ नाथ, बैठो। क्यों आज ऐसे अन्यमनस्क हो रहे हो? किसकी बात सोच रहे हो? चित्राङ्गदाकी? आज उसका ऐसा भाग्य क्यों है?

अर्जुन—सोच रहा हूँ कि वीराङ्गनाने ऐसा कठिन व्रत क्यों धारण किया ? उसे कमी क्या है ?

चित्राङ्गदा—उसे कमी क्या है ? था ही क्या अभागिनिके पास ? वीर्यने गगनभेदी बड़े बड़े सुदुर्गम किले चारों ओर बनाकर उसके स्त्री-हृदयको बन्द कर रक्खा था । रमणी स्वाभाविक रीतिसे अन्तःपुरमें रहनेवाली होती है । वह अपने स्वरूपको हृदयमें छुपाये रहती है । यदि हृदयमें छुपे हुए स्वरूपका प्रतिबिम्ब शरीरकी शोभावाली कान्तिमें न झलके तो उसे कौन देख सकता है ?—उसे क्या कमी है ? अरुणके लावण्यकी रेखासे सदाके लिए वञ्चित हो जानेपर जैसे उषा निष्प्रभ हो न पड़े वैसे ही वीर्यके शैल शिखरपर सैकड़ों अन्धकारमें छुपकर बैठी रहनेवाली छबिहीन वह अकेली नारी है । उसे कुछ कमी नहीं है ? जाने भी दो उसकी बातोंको ! उसका इतिहास ऐसा नहीं है कि पुरुषको श्रुतिमधुर जान पड़े ।

अर्जुन—कहे जा, कहे जा प्रिये । मेरी लालसा उसकी बातें सुननेके लिए बराबर बढ़ती ही जा रही है । उसके हृदयका मैं अपने हृदयमें अनुभव कर रहा हूँ । मुझे जान पड़ने लगा है कि मैं कोई प्रवासी हूँ और मझरातमें किसी परम सुन्दर प्रदेशमें प्रवेश कर रहा हूँ । नदी, पहाड़ और वनभूमि सब सो रहे हैं । सफेद सफेद अटारियोंवाली विशाल नगरीकी कुछ कुछ झलकसी देख पड़ती है । सागरकी गर्जना सी सुन पड़ती है । प्रवासी बड़ी उत्सुकताके साथ प्रतीक्षा करता है कि कब प्रभात हो और कब नगरका सौन्दर्य देखूँ, वैसा ही मेरा हृदय उस (चित्राङ्गदा) के लिए उत्सुक हो रहा है । कहे जा, कहे जा, मैं उसका वृत्तान्त और सुनूँ ।

चित्राङ्गदा—अब और क्या सुनोगे ?

अर्जुन—प्रिये, मैं उसे अश्वारोहीके रूपमें देख पाता हूँ । बायें

हाथमें बिना किसी प्रकारके आयासके, लगाम थाम रक्खी है और दहने हाथमें धनुषबाण लिए हुए है, मानो विजयलक्ष्मी सुहा रही है। आर्त प्रजाजनको वह वर और अभयदान दे रही है। गरीबोंके घर जानेमें राजा महाराजा समझते हैं कि हमारा मान मर गया; परन्तु माताके रूपमें वहीं पर जाकर वह दयामृतकी वर्षा करती है। सिंहिनीके समान वह अपने बालकोंकी रक्षा करती है कि कोई शत्रु मारे भयके पास भी नहीं फटकने पाता। दयामयी जगद्धात्रीके समान निर्भय, निःसङ्कोच और सुप्रसन्न वदनसे वीर्यसिंहपर सवार होकर वह घूमती फिरती है। रमणीके दोनों कमनीय भुजाओंके उस विशाल बल-विक्रमकी सङ्कोच रहित स्वाधीनताके सामने रणझण करते हुए कङ्कण-किङ्कणी कोई चीज नहीं है।—अयि वरारोहे! बहुत दिनोंसे कर्महीन हुए ये मेरे प्राण शिशिरकी दीर्घ निद्रासे उठे हुए, भुजङ्गके समान अशान्त होकर उछल रहे हैं। आ, आ, हम दोनों साथ साथ सवार होकर चञ्चल घोड़ोंको बड़े वेगसे दौड़ावें। दो प्रकाशमान ग्रह बड़े वेगसे जाते हों इस तरह इस कुन्द वातावरणमेंसे निकल चलें। इस तीव्र पुष्पगन्धकी मदिरासे नीदकी घोर घुमेरी पाये हुए जङ्गलके अन्ध गर्भसे बाहर हो जायँ।

चित्राङ्गदा—हे कौन्तेय! यदि मैं इस लालित्यको इस कोमल भीरुपनको और स्पर्शसे भी कुम्हलानेवाले शिरीष-पुष्पसे भी सुकुमार इस रूपको पराये वस्त्रोंके समान छिन्नभिन्नकर घृणाके साथ पैरोंमें फेंक दूँ तो क्या आप इस हानिको सहन कर सकोगे? कामिनीकी कपटकला और जादू भरे मायाजालको दूरकर यदि लचीली लताकी तरह सङ्कोचसे न लच जाऊँ, और, पर्वतके तेजस्वी तरुण तरुके समान आनन्दवायुसे लहराती हुई सीधी और समुन्नत होकर खड़ी हो जाऊँ तो क्या पुरुषकी निगाहमें अच्छी जचूँगी? रहने

भी दो, उसकी अपेक्षा यही अच्छा है ! यह यौवन मेरा दो दिन-का कीमती धन है । इसे सजाकर मैं बड़ी सावधानीसे रक्खूँगी । आपके आनेकी बाट देखती रहूँगी । समयपर जब आप आवेंगे तब लबालब भरे हुए देहपात्रसे आपको सुधापान कराऊँगी । सुखस्वाद करते करते जब आपको थकावट जान पड़े तब आनन्दसे काम करनेको चले जाना । जब मैं पुरानी हो जाऊँ तब मैं, आप कहेंगे वहीं पर कहीं-न-कहीं पास ही पड़ी रहूँगी ।—पार्थ ! रातकी सहचरी यदि दिनकी कर्मसहचरी बने, और दहने हाथ जैसे बायाँ हाथ देता है वैसे ही पुरुषका साथ स्त्री दे, तो क्या वह वीरके प्राणोंको सुखदायक जान पड़ेगी ?

अर्जुन—मैं तेरे रहस्यको कुछ भी नहीं समझ पाता हूँ । इतने दिनसे साथ हूँ तो भी कुछ पता नहीं चलता । ऐसा भान होता है कि सदा साथ रहकर तू मुझे धोखेमें रख रही है । देवताके समान प्रतिमाके भीतर रहकर तू मुझे अनमोल चुम्बन-रत्न और आलिङ्गन सुधाका दान कर रही है । तू स्वयं कुछ लेती नहीं है । लेना छोड़-कर कुछ चाहती तक नहीं है । यह अङ्गहीन और भाषाहीन प्रेम अन्तःकरणमें परिताप पैदा किये देता है । तेजस्विनी ! बातबातके बीचमें तेरा परिचय मिल रहा है । उसके सामने यह सौन्दर्यराशि मुझे केवल मिट्टीकी मूर्ति जान पड़ती है, निपुण कारीगरकी बनाई एक यवनिका मालूम होती है । बीचबीचमें और एक खयाल उठता है कि रूप तुझे धारण करनेमें असमर्थ है वह ढलमल करता हुआ काँप रहा है । नित्य प्रकट होनेवाली हँसीमें जान पड़ता है आँसू भरे हुए हैं और वे बीचबीचमें छलछल करते उमड़ पड़ते हैं कि मुहूर्तभरमें परदा फट पड़ेगा ।—साधकके सामने पहले मनोहर मायाकी काया धर भ्रान्ति आती है, इसके बाद वेशभूषासे रहित सीधासादा सत्य भीतर

और बाहर प्रकाश फैलाता हुआ देख पड़ता है । तेरा वही सत्य स्वरूप कहाँ है, मुझे उसका दान कर और मेरा जो कुछ सत्य स्वरूप हो उसे ग्रहण कर । बस ऐसा मिलन ही सदासर्वदाका मिलन है। उसमें किसी तरहका उपराम नहीं होता—किसी प्रकारकी थकावट नहीं होती ।—ये आँसू, क्यों प्यारी ? बाहुमें मुहँको छुपाकर यह व्याकुलता कैसी ? क्या मैंने कुछ चोट पहुँचाई प्रिये ? अच्छा इस बातको ही जाने दो । यह मनोहर रूप ही मेरे पुण्योंका फल है । यही मेरा सौभाग्य है कि यौवन-यमुनाकी परली पारसे वसन्त समीरके साथ आता हुआ सङ्गीत बीचबीचमें सुनाई पड़ता है । यह वेदना, मेरे सुखका अधिक सुख और आशाकी अधिक आशा है । यह वेदना हृदयसे भी बहुत बड़ी है, इसीसे ऐसा जान पड़ता है कि यह हृदयकी व्यथा है ।

मदन, वसन्त और चित्राङ्गदा ।

मदन—आज आखिरी रात है ।

वसन्त—(चित्राङ्गदासे) आजकी रात पूरी होते ही तेरे अङ्गकी शोभा वसन्तके अक्षय भाण्डारमें लौट जायगी । तेरा अधर राग पार्थकी चुम्बनस्मृतिको भूलकर लताके दो नवीन किसलयोंमें प्रकट होगा । तेरे अङ्गका रङ्ग सैंकड़ों मनोहर फूलोंमें नयारूप धारण करेगा और नवीन जागृतिमें पूर्व जन्मकी कथाको स्वप्नके समान छोड़ देगा ।

चित्राङ्गदा—हे अनङ्ग ! हे वसन्त ! तब क्या आज रातको ही मेरे रूपकी इतिश्री है ! तब तो उसे आखिरी रातके श्रान्त दीपककी अन्तिम लौकी भाँति एकदम उज्ज्वलतम कर दीजिए !

मदन—बहुत अच्छा, ऐसा ही होगा । मित्र, तब तू बड़े वेगसे प्राण भरकर दक्षिण पवनको चला । ज्यों मन्द पड़ा हुआ यौवनका सोता फिर नये उल्लासके साथ अङ्गअङ्गमें हिलोरे लेने लगे । मैं भी आज अपने पाँचों शरोंका वार कर रातकी नींदको भेदे देता हूँ और बाहुपाशमें बँधे हुए प्रेमी जोड़ेको भोगवती नदीके तरङ्गोंमें सराबोर किये देता हूँ ।

आखिरी रात।

—:o:—

अर्जुन और चित्राङ्गदा।

चित्राङ्गदा—प्रभो, आपका मनोरथ सिद्ध हो गया? इस सुगठित, सुललित और नवनीत कोमल सौन्दर्यमें जितना सौरभ और मधुरस था सबका उपभोग कर लिया? कुछ कसर तो न रह गई? और भी कुछ इच्छा है? मेरे पास जो कुछ था, क्या सब बीत गया?—नहीं प्रभो, नहीं बीता! भला बुरा अब भी मेरे पास कुछ बच रहा है। आज मैं उसे भी समर्पण करूँगी।

आपको रुचिकर होंगे, ऐसा सोचकर प्रियतम! बड़ी साधनाके साथ ये सौन्दर्यकुसुम स्वर्गके नन्दनवनसे लाई और आपके चरणारविन्दपर चढ़ा दिये। यदि पूजा पूर्ण हो गई हो तो प्रभो, आज्ञा दीजिए कि इस निर्माल्यकी टोकरीको मैं मन्दिरके बाहर खाली कर आऊँ। अब आप अपनी इस चरण किङ्करी पर प्रसन्नता भरे अपाङ्ग पात कीजिए।

जिस कुसुमावलीसे मैंने पूजा की है उस कुसुमावलीके सदृश सुमधुर सुकोमल और सर्वाङ्गसुन्दर मैं कभी नहीं हूँ प्रभो! मुझमें दोष है, गुण है, पाप है, पुण्य है, कुछ दीनता है; और है जन्मजन्मकी तृप्त न होनेवाली कुछ तृषा। मैं तो संसार मार्गकी प्रवासिनी हूँ। मेरे कपड़े धूलमें सने हुए हैं, मेरे पावोंमें घाव पड़े हुए हैं। दो घड़ीके जीवनवाली कुसुमावलीके समान निष्कलङ्क लावण्य मेरे पास कहाँसे आवे? परन्तु मेरे पास एक अक्षय और अमर वस्तु है। वह नारी-हृदय है। इस पृथ्वीकी मिट्टीसे पैदा हुए इस खाकी पुतलेमें सुख-दुःख,

आशा-निराशा, लज्जा-भय दुर्बलता-व्यथा नेम-प्रेम इत्यादि सब कुछ मनोविकार एक साथ इकट्ठे हुए हैं। इसमें एक बड़ी भारी असीम और और अनन्त अपूर्णता है। कुसुम सौरभसे तृप्त हो गये हो तो अब इस जन्म जन्मान्तरकी चरणानुरागिणी दासीपर कृपादृष्टि कीजिए।

सूर्योदय

(घूँघट खोलकर।)

चित्राङ्गदा—राजेन्द्र-नन्दिनी चित्राङ्गदा मैं ही हूँ। कदाचित् याद पड़ता होगा कि एक दिन उस सरोवरके तटपर शिवालयमें एक स्त्री दिखाई दी थी। जो सुन्दरी न थी; परन्तु जेवरोंसे लदी हुई थी, जिसने लज्जा छोड़कर न जाने क्या क्या कहा था, और पुरुषकी आराधना पुरुषकी भाँति करने लगी थी। आपने उसकी उपेक्षा की थी! अच्छा ही किया था। यदि आप उसे ग्रहण कर लेते तो जीवनभर अनुतापके मारे उसका हृदय जला करता। प्रभो! वह स्त्री मैंही हूँ। वह हूँ तो भी मैं वह नहीं हूँ, वह तो मेरा एक तुच्छ स्थूल देह था! इसके बाद मैंने वसन्तके वरदानसे एक वर्षभरके लिये अनुपम रूप पाया। मैंने अपनी कलाके प्रभावसे वीरहृदयको थका दिया। वह भी मैं नहीं हूँ—मैं तो चित्राङ्गदा हूँ—

न तो मैं देवी हूँ और न मैं साधारण रमणी ही हूँ। पूजा कर माथेपर चढ़ाओ ऐसी भी मैं नहीं हूँ तो तुच्छ कर पालन-पोषण किया करो वह भी नहीं हूँ। यदि मुझे सङ्कटके विकट मार्गमें साथ रक्खो, यदि मुझे कठिन कठिन चिन्ताओंमें भाग लेने दो, यदि मुझे महा कठोर व्रतोंमें सहायता देनेकी अनुमति दो और यदि मुझे सुख-दुःखके समय सहचरी होने दो तो जान पाओगे कि मैं कैसी हूँ—यदि वह पुत्ररूपमें प्रकट हुआ तो उसे मैं बचपनसे ही वीरोचित शिक्षा दूँगी और एकदिन उसे उसके पिताके पास पूर्ण पराक्रमशाली दूसरा अर्जुन बनाकर भेज दूँगी तब जानोगे प्रियतम कि मैं क्या हूँ! आज तो मैं केवल आपके चरणोंमें समर्पित होती हूँ राजेन्द्रनन्दिनी चित्राङ्गदा!

अर्जुन—प्रिये आज मैं कृतकृत्य हुआ।

समाप्त।